शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 जनवरी 2014

कवि, आलोचक एवं साहित्यकार कुमार कृष्ण के काव्य का समाज-सापेक्ष अध्ययन

डॉ.जोगिन्द्र कुमार यादव
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू)
क्षेत्रीय केन्द्र, चण्डीगढ़, भारत

शोध संक्षेप

नौवें दशक की हिन्दी कविता के प्रख्यात हस्ताक्षरों- राजेश जोशी, उदय प्रकाश, ऋतुराज, देवेन्द्र कुमार, स्वप्निल श्रीवास्तव, देवी प्रसार मिश्र, कुमार अम्बुज, मंगलेश डबराल, अरुण कमल, मान बहादुर सिंह, बोधिसत्व तथा लीलाधर जगूड़ी के समकालीन कुमार कृष्ण ने भी हिन्दी कविता में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की है। यह उनकी विशेषता है कि जहां एक ओर वह पूर्ववर्ती कविता से अलगाव करते हैं, वहीं दूसरी ओर उन्होंने नवीन और मौलिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन भी किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में उनके समाज सापेक्ष व्यक्तित्व और कृतित्व पर विचार किया गया है।

मुख्य शब्द - खुर-पशु का पांव, मवेशी-पशुधन, अनुपम वाटिका, रोपण-बीजना, सिंचन-सिंचाई, पल्लवन-अंकुर, तैल चित्र, भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी, दमन चक्र, भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता।

प्रस्तावना

साहित्य और समाज परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। किसी भी देश के सामाजिक जीवन के भाव-जगत और बौद्धिक जगत का परिचय साहित्य से मिलता है अतः साहित्य समाज के जीवन का जीवंत इतिहास होता है। समाज ही साहित्य का आधार है। समाज की परिस्थितियों के अनुसार साहित्य का निर्माण होता है। समाज की गतिविधियों की प्रतिध्वनि, क्रिया-कलापों का प्रतिबिम्ब, घटनाओं की प्रतिच्छाया, विचारों और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। समाजशास्त्रीय अध्ययन के द्वारा हम किसी व्यक्ति विशेष के साहित्य के विविध पहलुओं का अध्ययन करते हैं जैसे कि, सामाजिक स्थितियां एवं समस्याएं, परिवार और स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, धर्म एवं संस्कृति, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियां और सम्बद्ध समस्याएं आदि। कुमार कृष्ण ने अपनी कविताओं में इन सभी सन्दर्भों को पूर्णत: उभारने का सफल प्रयास किया है। लेकिन मात्र एक शोध पत्र में उनकी कविताओं एवं अन्य साहित्य का अध्ययन कर पाना सम्भव नहीं, अतः कुछ ख्याति प्राप्त चुनिन्दा कविताओं को प्रकाश में लाने का प्रयास इस शोध पत्र में किया गया है।

शोध प्रविधि

बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न कवि कुमार कृष्ण जहां हिमाचल के हिन्दी साहित्य में अग्रणी कवि,

आलोचक एवं साहित्यकार के रूप में स्थान रखते हैं वहीं राष्ट्रीय हिन्दी कविता में राजेश जोशी, उदय प्रकाश, ऋतुराज, देवेन्द्र कुमार, स्वप्निल श्रीवास्तव, देवी प्रसार मिश्र, कुमार अम्बुज, मंगलेश डवराल, अरुण कमल, मान वहादुर सिंह, बोधिसत्व तथा लीलाधर जगूड़ी के समकालीन अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की है। इस शोध पत्र का उद्देश्य उनकी कुछ चुनिन्दा कविताओं का समाज-सापेक्ष अध्ययन कर पाठकों के समक्ष लाने का एक प्रयास है। उक्त शोध पत्र में सर्वेक्षण विधि को अपना कर सामग्री एकत्रित की गई है।

कुमार कृष्ण का व्यक्तित्व और कृतित्व

बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न कुमार कृष्ण ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र विशेषतयः कविता के क्षेत्र में सराहनीय ख्याति हासिल की है। 30 जून 1951 को शिमला (हिमाचल प्रदेश) के पास लगते एक छोटे से गांव 'नागड़ी' में जन्मे कुमार कृष्ण की आरम्भिक शिक्षा गांव के नजदीक ही राजकीय प्राथमिक पाठशाला में सम्पन्न हुई। सन् 1966 में राजकीय उच्च विद्यालय शोघी से दसवीं कक्षा की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के पश्चात सन् 1970 में सनातन धर्म भार्गव महाविद्यालय (अब राजकीय कन्या महाविद्यालय), शिमला से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। सन् 1972 ई0 में हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, से प्रथम श्रेणी में हिन्दी में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। इस उपलब्धि के फलस्वरूप विश्वविद्यालय ने इन्हें शोध हेतु फैलोशिप प्रदान की। तत्कालीन फैलोशिप ग्रहण करने वाले एकमात्र छात्र कुमार कृष्ण ने डॉ.बच्चन सिंह के निर्देशन में एम0.फिल. करने के पश्चात इसी विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कुमार कृष्ण ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र विशेषतयः कविता के क्षेत्र में सराहनीय ख्याति हासिल की है। हंसमुख एवं आकर्षक व्यक्तित्व के स्वामी, अनुभवी, ईमानदार, कुशल एवं प्रतिष्ठित शिक्षक की लम्बी सफल तथा सराहनीय सेवा देकर हाल ही में प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत हुए कुमार कृष्ण ने प्रदेश विश्वविद्यालय में अपनी सेवा के दौरान विभागाध्यक्ष, छात्र कल्याण अधिष्ठाता, अधिष्ठाता भाषा संकाय तथा अध्यक्ष, बौद्ध विद्या केन्द्र जैसे महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य किया। एक अध्यापक के रूप में उनका व्यक्तित्व अद्वितीय है। वह छात्रों की प्रतिभा को तराशते हैं, निखारते हैं। छात्रों की सुप्त संवेदनाओं को उद्वेलित कर उनकी क्षमताओं तथा सम्भावनाओं की शिनाख्त करते हैं। उनका कवि हृदय एक अनुपम वाटिका है, जहां पर उनकी काव्यानुभूतियों का रोपण, सिंचन तथा पल्लवन होता है। कवि कुमार कृष्ण का कृतित्व केवल एक विधा तक सीमित नहीं, अब तक प्रकाशित विभिन्न कविता-संग्रह, गज़ल-संग्रह, आलोचनात्मक ग्रन्थ तथा राष्ट्र स्तरीय हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताएं एवं शोध लेखों से सहज ही उनके साहित्यकार को देखा जा सकता है। इनके प्रमुख काव्य संग्रहों में- 'डरी हुई ज़मीन' (अठारह कविताओं का संकलन है। संग्रह की कविताओं के माध्यम से कवि ज़मीन के दर्द के साथ साक्षात्कार करता है। इस काव्य संग्रह में जहां कवि ने जमीन से जुड़े हुए बिम्बों का सृजन किया है वहीं इसमें कवि ने जमीन के साथ किसान का सम्बन्ध भी स्थापित किया है), 'पहाड़ पर बदलता मौसम' (पन्द्रह कविताओं के इस काव्य संग्रह की चर्चित कविता 'छेरिंग दोरजे' एक

भोले-भाले ग्रामीण कृषक के जीवन के दर्द को उजागर करती है, जो दुनिया की बड़ी-बड़ी खबरों से बेखबर होकर जमीन की शक्ल बदलने में संघषर्ारत है), 'खुरों की तकलीफ' (कविता संग्रह की कविताओं के माध्यम से कवि ने ग्रामीण परिवेश, ग्रामीण संवेदना, ग्रामीण जीवन तथा ग्रामीण जीवन पद्धति और भारतीय राजनीति की विकृतियों से साक्षात्कार किए हैं), 'मेरी कविताएं' (कविता संग्रह में कवि ने कुछ चुनिन्दा कविताओं का ही संकलन किया है), 'घमर' (कविता संग्रह की कविताओं में लोक चेतना तथा ग्रामीण संवेदना का पारदर्शी समन्वय देखने को मिलता है। इन कविताओं में भारतीय गांव तथा शहर, भारतीय घर तथा परिवार, भारतीय आस्थाएं, विश्वास, भारतीय संस्कार, हिन्दुस्तानी अशिक्षित स्मृतियां तथा ठेठ मानवीय रिश्तों की आग विद्यमान है।), 'पहाड़ पर नदियों के घर' (कविता संग्रह में कवि का वक्तव्य है कि पहाड़ पर अभी भी रिश्तों की गर्माहट जीवित है। इन कविताओं में रागात्मकता को प्रधानता दी गई है। इस कविता संग्रह की भूमिका विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखी है। इस कविता संग्रह का पांच भाषाओं में अनुवाद किया जा रहा है)।

इसके अतिरिक्त कवि ने 'काठ पर चढ़ा लोहा' नामक एक ग़जल संग्रह भी लिखा है। इस गज़ल संग्रह में कवि ने विषय वस्तु तथा शैली के स्तर पर नए प्रयोग किए हैं। यह गज़ल संग्रह समकालीन विषमताओं पर गहरा प्रहार करता है। इसमें कवि ने एक साथ शहरी तथा ग्रामीण तनाव दोनों को झेला है। शहरी सभ्यता तथा ग्रामीण सभ्यता की आपसी टकराहट से उत्पन्न दर्द और संघर्ष की, सतत प्रवाह में अभिव्यक्ति हुई है। इनके इस संग्रह में पहाड़ों के मध्य बसे हुए गांव की गूंज दूर-दूर तक अर्थात् जन-जन तक सुनाई देती है। इसमें कवि की सूक्ष्मता दिखाई देती है। कवि ने साधारण शब्दों व बिम्बों के माध्यम से बड़ी गहरी बातों को सहजता से पाठकों तक पहुंचाने का यत्न किया है। इस गज़ल संग्रह की प्रत्येक गज़ल उत्प्रेरक की सक्षम भूमिका अदा करने में पूर्णतया समर्थ प्रतीत होती है। कवि कुमार कृष्ण ने काव्य तथा गज़ल के साथ-साथ आलोचनात्मक ग्रन्थों में भी अपनी लेखनी चलाई है। इनके आलोचनात्मक ग्रन्थों में- 'समकालीन साहित्यः विविध सन्दर्भ', 'कविता की सार्थकता', 'हिन्दी कथा साहित्यः परख व पहचान', 'दूसरे प्रजातन्त्र की तलाश में धूमिल', 'समकालीन कविता का बीजगणित' आदि शामिल हैं। कवि कुमार कृष्ण का कृतित्व केवल एक विधा तक सीमित नहीं है। अब तक प्रकाशित विभिन्न कविता-संग्रह, गज़ल-संग्रह, आलोचनात्मक ग्रन्थ तथा राष्ट्र स्तरीय हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताएं एवं शोध लेखों से सहज ही उनके साहित्यकार को देखा जा सकता है। नौवें दशक की हिन्दी कविता के प्रख्यात हस्ताक्षरों- राजेश जोशी, उदय प्रकाश, ऋतुराज, देवेन्द्र कुमार, स्वप्निल श्रीवास्तव, देवी प्रसार मिश्र, कुमार अम्बुज, मंगलेश डबराल, अरुण कमल, मान बहादुर सिंह, बोधिसत्व तथा लीलाधर जगूड़ी के समकालीन कुमार कृष्ण ने भी हिन्दी कविता में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की है। यह उनकी विशेषता है कि जहां एक ओर वह पूर्ववर्ती कविता से अलगाव करते हैं, वहीं दूसरी ओर उन्होंने नवीन और मौलिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन भी किया है। देश की स्तरीय पत्रिकाओं विपाशा, पहल, वर्तमान साहित्य, शिखर, हिमप्रस्थ

आदि में कवि की विभिन्न कविताएं तथा लेख भी प्रकाशित हुए हैं। साथ ही सम्पादक (हांक) के रूप में तथा संयोजक (हिमाचल वाड.मय) के रूप में भी इन्होंने साहित्य के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। कुमार कृष्ण में लेखन के साथ-साथ अन्य कलात्मक अभिरुचियां जैसे- तैल चित्र बनाना, रेखा चित्र बनाना, वुडक्राफ्टिंग करना, पुस्तकों का संकलन करना तथा बढ़िया सुलेख भी हैं। कवि ने लगभग 100 कवियों की कविताओं पर तैल चित्र बनाए हैं तथा उन तैल चित्रों के माध्यम से कविता के कथन को समझाने की कोशिश की है। इन्होंने दो सौ से अधिक कविताओं के रेखा चित्र भी बनाए हैं तथा इन रेखा चित्रों की प्रदर्शनी का कई बार आयोजन किया गया है।

इसके अतिरिक्त देश की स्तरीय पत्रिकाओं विपाशा, पहल, वर्तमान साहित्य, शिखर, हिमप्रस्थ आदि में कवि की विभिन्न कविताएं तथा लेख भी प्रकाशित हुए हैं। साथ ही सम्पादक (हांक) के रूप में तथा संयोजक (हिमाचल वाड.मय) के रूप में भी इन्होंने साहित्य के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। कुमार कृष्ण में लेखन के साथ-साथ अन्य कलात्मक अभिरुचियां जैसे- तैल चित्र बनाना, रेखा चित्र बनाना, वुडक्राफ्टिंग करना, पुस्तकों का संकलन करना तथा बढ़िया सुलेख भी हैं। कवि ने लगभग 100 कवियों की कविताओं पर तैल चित्र बनाए हैं तथा उन तैल चित्रों के माध्यम से कविता के कथन को समझाने की कोशिश की है। इन्होंने दो सौ से अधिक कविताओं के रेखा चित्र भी बनाए हैं तथा इन रेखा चित्रों की प्रदर्शनी का कई बार आयोजन किया गया है।

कवि में क्रियात्मकता की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है, इसका आभास उनके निवास स्थान पर जाने से स्वतः ही हो जाता है। उपेक्षित लकड़ी के टुकड़ों तथा पेड़ों की जड़ों क्राफ्ट करके बनाई गई कलाकृतियां इनकी कलात्मक अभिरुचि का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। पुस्तक संग्रह करना भी इनकी अभिरुचि का उदाहरण है। इनके निजी पुस्तकालय में लगभग 5 से 7 हजार तक पुस्तकों का संकलन है। हिन्दी साहित्य के विकास में योगदान के लिए इन्हें बहुत से पुरस्कार, सम्मान तथा राष्ट्रीय समितियों की सदस्यता भी प्राप्त हुई है। इन्हें 'डरी हुई ज़मीन' कविता-संग्रह पर हिमाचल भाषा, कला एवं संस्कृति अकादमी का कविता-पुरस्कार, कविता विधा के लिए गजानन माधव मुक्तिबोध सम्मान, भारतीय जन-भाषा प्रचार समिति महाराष्ट्र द्वारा 'जन कवि' के रूप में सम्मानित किया गया। यह के.के. बिड़ला फांउडेशन द्वारा साहित्यिक कृति पर प्रति वर्ष दिए जाने वाले ढाई लाख रुपये के 'व्यास सम्मान' के लिए तीन वर्ष तक निर्णायक मण्डल के सदस्य भी रहे। ।

साहित्य (काव्य) का समाज-सापेक्ष अध्ययन

साहित्य और समाज परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। समाज में रहने वाले व्यक्ति अथवा व्यक्तियों ने जब अपने 'स्व' को अभिव्यक्त करने की तीव्रता अनुभव की होगी तभी साहित्य का उद्भव हुआ होगा। समाज यदि शरीर है तो साहित्य उसकी आत्मा है। किसी भी देश के सामाजिक जीवन के भाव-जगत और बौद्धिक जगत का परिचय साहित्य से मिलता है अतः साहित्य समाज के जीवन का जीवंत इतिहास होता है। मानव के विचारों एवं अनुभूतियों की निधि साहित्य के

माध्यम से ही संचित रहती है। समाज का जैसा आचार-व्यवहार, संबंधों का आदान-प्रदान और जीवन-मूल्य होते हैं, साहित्य में भी उसकी प्रतिच्छाया मिलती है। समाज ही साहित्य का आधार है। समाज की परिस्थितियों के अनुसार साहित्य का निर्माण होता है। समाज की गतिविधियों की प्रतिध्वनि, क्रिया-कलापों का प्रतिबिम्ब, घटनाओं की प्रतिच्छाया, विचारों और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। किसी भी देश की किसी काल की सामाजिक स्थिति की सही जानकारी उस देश के साहित्य को पढ़कर प्राप्त कर सकते हैं।

कुमार कृष्ण की कविताओं में गांव के आदमी की तकलीफ, ग्रामीण साहस, उसके मानवीय गौरव बोध, यथास्थिति को तोड़ने की छटपटाहट दिखलाई पड़ती है। कवि का किसानी संस्कार, अपनी संस्कृति तथा उत्पादक संस्कृति के नष्ट होने के खतरे से व्याकुल है। उनकी प्रत्येक कविता में अनुभूति अपने सन्दर्भानुरूप वातावरण में ही वाणी बोलती है। अन्य कवियों की भांति कुमार कृष्ण का काव्य-संसार समाज से दूर नहीं रहता अपितु समाज में रहते हुए, सामाजिक अन्तर्विरोधों के बीच जीते हुए, व्यवस्था के विभिन्न रूपों की यातनाओं को झेलते हुए वैयक्तिक व सामाजिक स्तर पर मुखर हुआ है। इन्होंने शहर व गांव के विरोधों को अपने भीतर झेलकर जो अभिव्यक्ति दी है वह हिन्दी की कविता को अनूठी देन है। ग्रामीण परिवेश व शहरी सभ्यता के बीच के संघर्ष की यातना को जिस प्रकार इस कवि ने झेला है वह अनुभूति व संवेदना नौवें दशक के किसी अन्य कवि के पास नहीं है। सच्चे अर्थों में मात्र यही एक कवि हैं जो नौवें दशक की हिन्दी कविता में गांव के दर्द को आत्मसात् किए हुए हैं। इनका काव्य गांव की ठोस जमीन पर उगता हुआ काव्य है। गांव का समूचा दर्द जो हर फिजां में समाया हुआ है, गांव की गंध, गांव का परिवेश, गांव का जीवन-संघर्ष व गांव की मानसिकता पूरी तरह से इनके काव्य में प्रतिबिम्बत हुई है।

समाज में जैसी भावनाएं और विचार होते हैं, तत्कालीन साहित्य में उनका वैसा ही रूप देखा जा सकता है। प्राचीन साहित्य ऋषियों-मुनियों द्वारा रचा गया अतः उसमें प्रकृति और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की प्रचुरता है। भक्तिकाल का साहित्य भक्ति-धर्म और समाज में समन्वय एवं एकता की स्थापना का साहित्य है इसमें रूप-रस की भावना शक्ति का आधिक्य है। रीतिकालीन सामन्ती सभ्यता के भोग-विलास की प्रवृत्ति समाज के चरित्र में अधिक थी। आधुनिक साहित्य में भौतिक उन्नति के सुख-वैभव से जीवन में जिस प्रकार का व्यर्थता बोध, विघटन, अकेलापन, अजनबीपन, औद्योगिक सभ्यता का त्रास, मानव की अकिंचनता, तीव्रगामी व्यस्त जीवन, अर्थज-कामज अपराध समाज के जीवन में आया तो साहित्य में भी उसका प्रतिफलन हुआ। रचनाकार समाज से अलग नहीं रह सकता। इस सन्दर्भ में राजेन्द्र प्रसाद तिवारी कहते हैं कि रचनाकार अपने समाज से अलग नहीं होता, बल्कि उसी समाज की एक संवेदनशील इकाई होता है, इसीलिए उसके सृजन संसार में समाज की तस्वीर को देखा जा सकता है। जिस रचनाकार की अनुभूति जितनी ही पैनी होती है, उसकी रचना में समाज जिसे आप परिवेश भी

मान सकते हैं की पहचान उतनी ही गहरी होती है।

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था भ्रष्टाचार, अमानवीयता, आर्थिक असमानता, जीवन मूल्यों के विघटन, मानव विकृतियां तथा अवसरवाद की भावना से रुग्ण हो चुकी है। साहित्यकार इससे विमुख नहीं हो सकता। सामाजिक विसंगति का प्रारम्भ वर्षों पूर्व हो चुका था। गजानन माधव मुक्तिबोध का कहना है कि मेरा विचार है कि जिस भ्रष्टाचार, अवसरवादिता और अनाचार से आज हमारा समाज व्यथित है, उसका सूत्रपात हमारे बुजुर्गों ने किया। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत में दिल्ली से लेकर प्रान्तीय राजधानियों तक अवसरवाद और भ्रष्टाचारवादिता के जो दृश्य दिखाई देते हैं, उनमें बुजुर्गों का बड़ा हाथ है। कवि इन सामाजिक असंगतियों को पकड़ता है। इसलिए कवि केदारनाथ का मानना है कि मैं मन को बराबर खुला रखने की कोशिश करता हूं, ताकि वह आसपास के जीवन की हल्की से हल्की आवाज को भी प्रतिध्वनित कर सके। इससे स्पष्ट होता है कि आज की कविता मानव के जीवन से जुड़ी हुई है। इसीलिए कुमार कृष्ण लिखते हैं कि आज कविता, आदमी की नियति को समझने की चीज है। कविता मनुष्य की नियति को, उसकी समकालीन वास्तविकता को समझने-पहचानने का माध्यम है। समय की चुनौतियों को स्वीकारने के लिए कविता को नया रूप धारण करना पड़ता है, जब अकूत अनुभवों को समेटने के लिए पारम्परित ढांचा काफी नहीं होता है। एक अन्य स्थान पर इन्होंने लिखा हैं कि कविता मनुष्य की नियति को, उसकी समकालीन वास्तविकता को समझने पहचानने का माध्यम है। एक सही कविता की सार्थकता इसी में है कि वह जीवन और जगत की अनुभूतियों व पीड़ाओं का अत्यधिक निकटता से अवलोकन करे तथा आदमी की कुण्ठाओं, संवादों के साथ-साथ उसकी बेचैनी, अकुलाहट, तड़प और छटपटाहट को भी रूपायित करे।

कुमार कृष्ण का कवि वर्तमान समाज में पनप रही जन विरोधी शक्तियों के प्रति घोर रूप से चिन्तित है। उनका चिन्तन सतही, तटस्थ तथा वक्तव्य न होकर सहभागिता के धरातल पर अभिव्यक्त हुआ है। उन्होंने प्रतिपक्षी की हर पीड़ा को संवेदनात्मक धरातल पर भोगा है। कवि अपनी काव्य यात्रा उस पीड़ा से प्रारम्भ करता है, जिस पीड़ा को भारतीय किसान आज तक भोगता आ रहा है-

रोटी के जले हुए इतिहास को

जितनी बार भी मैंने की

लिखने की कोशिश

मैंने सोचा

लिखना होगा

पहले मुझे उस तकलीफ को

जो होती है

और लगातार होती रहती है

अनाज को रोटी बनने में।

कवि के लिए कविता आभिजातीय मानसिकता के लिए उनके अहं की तुष्टि न होकर मानवीय पीड़ा

की कातर तथा मर्मस्पर्शी और हृद्य विदारक कराहट है-

कविता धूप का गीत

जंगल की खुशबू ही नहीं

कविता पानी के पत्थरों का दर्द भी है।

कवि ने सामाजिक विसंगतियों को आत्मानुभव के आधार पर स्वीकृति प्रदान की है। स्वतन्त्रता के बाद भी यथास्थितिवाद का पोषण करने वाली प्रवृत्तियां फल-फूल रही हैं। औसत आदमी यथास्थितिवाद से उत्पन्न भयावह वातावरण की कालिमा में अपनी पहचान खोता जा रहा है। स्वाधीनता प्राप्ति की स्थिति उसके लिए निरर्थक और पीड़ादायक है क्योंकि लोकतन्त्र की स्थापना के बाद जिस अनुकूल और उज्ज्वल व्यवस्था को प्राप्त करने की उसने आशा की, वह भ्रष्ट तथा स्वार्थ से लबालब शासन तन्त्र ने धूमिल कर दी। जनता लोकतन्त्र की विश्वसनीयता के प्रति लापरवाह हो गई-

गर्म दीवारों पर

प्रति दिन उसके

जलता है मानचित्र

लोकतन्त्र का

फ्रेरम से गिरकर

बाहर निकल आती

आजादी की

उपेक्षित तस्वीर।

'काठ पर चढ़ा लोहा' गज़ल संग्रह वर्तमान व्यवस्था की विकृतियों का बड़ी निर्भीकता और धैर्य के साथ अनावरण करता है। 'गज़ल' के रूप में मानव की नियति की व्याख्या की गई है। कवि को इस बात की भी चिन्ता है कि उसके हृद्य की व्यथा को आज तक किसी ने नहीं समझा-

एक ही मज्मून मैं ता उम्र लिखता ही रहा

फिर भी दिल का दर्द न लोगों ने पहचाना कभी।

इस गज़ल संग्रह में कवि ने प्रतिपक्षी सत्ता द्वारा स्थापित किए गए आतंक के कुहासे की भी पहचान की है। पुलिस तन्त्र औसत आदमी के जीवन में आतंक, भय, यातना, पीड़ा, कष्ट तथा मानवीय क्रूरता का विष घोलता है। हमारे देश में पुलिस, व्यवस्था-तन्त्र के हितों की रक्षा और उनका पोषण करती है। स्वार्थ, लालच तथा भ्रष्टाचार से युक्त व्यवस्था शासन की ढाल बनकर पुलिस तन्त्र भी भ्रष्टाचार से रंग गया है। पुलिस तन्त्र आज आम जनता को देश के राजनेताओं के दृष्टिकोण से देखता है। कवि कहता है-

शहर खाली था वहां औ' वार्दियां थी बूट में

गैर हाजिर थे सभी न थी वहां सरकार भी।

कवि एक अन्य स्थान पर प्रचार माध्यमों की वास्तविकता को भी अनावृत करता है, क्योंकि यह भी सरकार के हित से जुड़े हुए हैं-

गांव के मुखिया से हमने जो सुना सब झूठ था

झूठ की करते वकालत थे वहां अखबार भी।

कवि को शहर की गलियों में सरकार की साजिश फैलती हुई दिखलाई पड़ती है-

साजिशें दीवार पर चुपचाप थीं चिपकी हुई

और सायों की तरह खामोश थे इश्तहार भी।

वर्तमान शासन तन्त्र की सबसे बड़ी कुरूपता यह है कि इस भ्रष्ट तन्त्र में भी गरीब के पेट को ही कुचला जाता है और गरीब की यातना को सुनने वाला कोई नहीं है। कवि कुमार कृष्ण कहते हैं-

रोटियों पर उनके जूते शान से चलते रहे

उनकी हरकत रोकने वाला न मुझको मिल सका।

वोट की राजनीति के लिए सरकारी तन्त्र तथा नेताशाही अपने हितों के पोषण के लिए भयानक दमन चक्र का सहारा लेती है। कवि ने शहरी जिन्दगी में विद्यमान असुरक्षा की भावना और आतंक को इन पंक्तियों में उतारा है-

बस्तियों की भीड़ ने अब शहर जाना कम किया

क्या पता कब कौन कर दें कत्ल किस राहगीर को।

आज भारतवर्ष की प्रगति केवल कागजों पर दौड़ रही है। योजनाएं बनती हैं, परन्तु उनका लाभ उन आदमियों को नहीं मिलता, जिनके लिए योजनाएं बनाई जाती हैं-

खूबसूरत योजनाएं सर छुपाने की बनीं

घर तो घर वां आज तक तम्बू न कोई तन सका।

इस विद्रूपता को अनावृत करते हुए कवि एक अन्य स्थान पर कहता है-

इश्तहारों ने कहीं यों देश की खुशहालियां

एक ढिबरी के लिए भी तेल मुझको न मिला।

आज आम आदमी एक प्रकार के भ्रम का शिकार है कि वह सुरक्षित है और उसका भविष्य उज्ज्वल है-

रफ्ता-रफ्ता ये जमीं बदरंग होती जा रही

एक झूठी सी तसल्ली में ही जीते हम यहां।

देश को खुशहाल बनाने की योजनाएं बनती हैं, परन्तु व्यवहार में इनका लाभ शासन तन्त्र के अधिकारियों और राजनेताओं को ही सुलभ होता है-

तख्तियों पर देश की नदियां बहाते हम रहे

देश मेरा योजनाओं की गुफा में खो गया।

वर्तमान व्यवस्था में कानून का प्रयोग राजनेता लोग अपने हितों की रक्षा के लिए करते हैं। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए यह लोग कानून की व्याख्या अपने दृष्टिकोण के अनुरूप करते हैं। गरीब और आम जनता को सदा ही कानून की चक्की में पिसना पड़ता है-

हम मदरसे में पढ़ाते तो रहे कानून को

अपने अधिकारों के खातिर सर को तुड़वाना पड़ा।

आज की शासन व्यवस्था में पुलिस तन्त्र व्यवस्था का सुरक्षा कवच बन गया है। उसकी कथनी और करनी में तीव्र विरोधाभास है। उनकी सेवा भावना का अर्थ यथास्थितिवाद का पोषण है। दूसरी तरफ 'सेवा भावना' का ढोंग करने वाले लोग दिन में कल्याणकारी कार्य करने का

आडम्बर रचते हैं और रात को घोर अनैतिक तथा कलुषित कार्यों में लिप्त रहते हैं-

गगन चुम्बी जिस मकां का नाम था सेवासदन

उस मकां में मुझको हर एक शख्स गुण्डा ही मिला।

कवि की चिन्ता यह है कि देश में सुविधाओं को भोगने वाले लोग कम हैं, परन्तु फिर भी यह लोग देश की सत्ता पर बने हुए हैं और धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ रही है-

चन्द लोगों ने दराजों में छुपा रखा है देश

सांप सी नस्लें ही उनकी हर जगह सोने लगी।

देश की स्वाधीनता का प्रचुर लाभ इन्हीं लोगों को मिल रहा है। यह लोग स्वाधीनता के अवसर पर देश भक्ति के नाम पर तरह-तरह के आडम्बर रचते हैं जबकि लाखों-करोड़ों लोगों को अभी भी भुखमरी से लड़ना पड़ रहा है-

शहर में रौनक रही बस यूं तो आजादी के दिन

कुछ घरों में रात तक चलता रहा उपवास है।

अन्य गज़लकारों की तरह कुमार कृष्ण यथार्थवाद के नाम पर यथास्थितिवाद को पुष्ट नहीं करते, अपितु परिवर्तन की सम्भावनाओं को भी तलाशते हैं। इसलिए वह कहते हैं-

अब तो सारा गांव ही जलसे में शामिल हो गया

जल्द कोई बदलेगा अब देश की तकदीर को।

'काठ पर चढ़ा लोहा' वर्तमान लोकतन्त्र की विकृतियों को बड़ी निर्भीकता से अनावृत करता है। इस सन्दर्भ में कुमार दिनेश का कहना है कि कुमार कृष्ण की गज़लें गांव और शहर के बीच बढ़ती विसंगतियों, श्रम की उपेक्षा, भूख की मजबूरी, भाग्यवाद, नौकरशाही, अखबारों की भूमिका, योजनाओं की त्रासदी आदि कई चुभती हुई अनुभूतियों को समेट कर गेय और उपादेय बनाती हैं। चाटुकारिता और ड्राइंग रूम में सिर्फ फैशन के तहत गांव की तस्वीरें लगाने के आधुनिक पाखण्डवाद पर भी प्रहार किया है।

कुमार कृष्ण की कविताएं सामाजिक जीवन की कुरूपताओं के कुहासे में ढके आम आदमी की पहचान करती हैं। 'छेरिंग दोरजे' कविता जहां एक ओर देहाती मानसिकता की निश्छलता को प्रमाणित करती है, वहीं दूसरी ओर शहरी समाज के व्यभिचारी षडयन्त्रों को बेनकाब करती हैं-

जितने लोग लाए गए शहरी इमारतों में

रफ्ता-रफ्ता हो गए पागल

गूंगे, बहरे-घोषित किया विशेषज्ञों ने

पर असल बात तो ये थी कि वे सब

नहीं थे पागल

नहीं थे गूंगे बहरे

उनके पास ये शहरी भाषा के बिना

आदमी और औरतों के पूरे शरीर

किया जा सकता था जिनको इस्तेमाल

ठेले खींचने के लिए।

'पहाड़ पर बदलता मौसम' कविता संग्रह में प्रतिपक्षी की जन-विरोधी नीतियों और मानवता के लिए दूषित प्रवृत्तियों का पर्दाफाश हुआ है।

इसलिए डॉ. चमनलाल गुप्त कहते हैं कि 'पहाड़ पर बदलता मौसम की कविताओं पर बात करना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि ये कविताएं सामाजिक जीवन के प्रति बहुत सचेत और जागरूक कविताएं हैं। कुमार कृष्ण की कविताओं में असंगति, अन्याय, दमन, उत्पीड़न और दैन्य को जन्म देने वाली व्यवस्था के प्रति आक्रोश तो है, परन्तु शब्दों के गुब्बारे भीड़ में उछाल कर मुक्ति का मसीहा बनने का सस्ता अन्दाज नहीं हैं।

'चरनदास की डायरी' कवि की एक लम्बी कविता है जो देश की भयावह स्थिति को हमारे सामने रखती है। कविता का नायक चरनदास कहता है-

मेरे उठने से पहले

दरवाजे से पसर आती है

सड़कें

गलियां

लोकतन्त्रीय तस्वीरें

मैं सबसे पहले प्रवेश करता हूं

आदमी के कत्ल की कहानियों में

मौत का भय

अवसरवादिता के बहुत करीब होता है

मैं अपने दोनों हाथों से

अखबार की शक्ल में

पूरा देश थामता हूं।

चरनदास आम आदमी का प्रतीक है, जो रोजमर्रा के जीवन में अपनी पहचान ढूंढ रहा है। वह पानी के लिए कतार में खड़ा होता है। दफ्तर जाने के लिए सड़कें नापता है। बनिए की दुकान पर जाता है और अपने बच्चों के भविष्य को तलाशता है। चरनदास के जीवनानुभव जितने सत्य हैं, उतने ही कड़वे भी हैं, जब वह यह कहता है-

अपने मतलब के लिए

खुद को नंगे होकर बेचना

शायद निहायत जरूरी है।

चरनदास के लिए कविता का सच आइने के सच की तरह है-

आइने के सच में

और कविता के सच में

शायद कोई फर्क नहीं

फिर भी देश के अधिकतर चेहरे

सिनेमा घर की ओर जा रहे हैं।

चरनदास मौलिक पात्र होते हुए भी सामाजिक जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। उसे देश के तापमान का ज्ञान है, इसलिए वह कहता है-

पूरी तरह सड़क पर होना

देश की हरकतों के बीच होना है।

चरनदास शासन तन्त्र की रुग्णताओं पर गहरा घाव लगाता है। हमारे दफ्तरों में कुर्सी पर बैठकर कर्मचारी फाइलों में किस तरह देश के साथ खेलते हैं, उसके बारे में वह कहता है-

यह वही जगह है जहां हम

रीढ़ की हड्डी को पूरी तरह से

कुर्सी के हवाले करते हैं

चार टांगों पर दौड़ने लगता है

फाइलों का सच

कविता को

ऐसी जगह पर ही होना चाहिए

जहां साफ-साफ देख सके वह

खूबसूरत मेजों की हरकतें।

दफ्तरों में बैठकर योजनाएं बनती हैं। देश कागजों पर दौड़ने लगता है और कागजों में ही खत्म हो जाता है-

यह वही जगह जहां

धीरे-धीरे मरता है आदमी

धीरे-धीरे काठ होता है देश।

आम आदमी दफतर से छूटकर जिन्दगी की लड़ाई में शामिल हो जाता है-

दफ्तर से छूटा हुआ आदमी

बनिये के सामने खड़ा होता है

या बच्चों के जूतों के आगे

वह लम्बी कतारों में खड़ा

अगली पीठ के हिलने का इन्तजार करता है।

भुखमरी, गरीबी, असुरक्षा की भावना, बेरोजगारी, व्यवस्था का दमन चक्र, भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता तथा चरित्रहीनता आदि जन-विरोधी प्रवृत्तियां हमारे समाज में निरन्तर पोषित हो रही हैं, जो यथास्थितिवाद के संरक्षण के लिए उर्वरकों का काम कर रही हैं। भुखमरी का दैत्य केवल आम आदमी को ही नहीं, अपितु जानवरों को भी निगल रहा है-

दिन भर खेत में कनस्तर पीटने पर

भागते नहीं नाचने लगते हैं बन्दर

पहनने लगे हैं वे बिजुका के कपड़े

बन्दर भय से नहीं

भूख से डरने लगे हैं

मक्की की जगह घास चरने लगे हैं।

कवि ने वर्तमान शिक्षा पर भी गहरा व्यंग्य किया है। वह कहता है-

विद्यारम्भ वाले दिन

पंडित जी ने मुझे पढ़ाया

'अ' से अनार 'आ' से आम

तीस वर्ष बीत जाने पर भी नहीं जान सका

इन दोनों फलों का स्वाद।

कुमार कृष्ण का कवि सामाजिक विसंगतियों से भी सीधा साक्षात्कार करता है। उनकी कविता के माध्यम से सामाजिक पीड़ा को समझा जा सकता है। इस सन्दर्भ में चितरंजन मिश्र का कहना है कि कुमार कृष्ण एक ऐसे कवि हैं, जो कविता को केवल 'धूप का गीत' या 'जंगल की खुशबू' मानने से इन्कार करते हैं और स्वीकार करते हैं कि कविता पानी के पत्थरों का दर्द भी है और पानी

से पत्थर बनने में, तरल से ठोस बनने में, चीजों और मानवीय नियति के भी अपनी सहज गुणवत्ता है। अलग होने के दर्द की पहचान कवि का इष्ट है। कवि बर्फ, नदी, पहाड़ और पानी की तकलीफ का बयान करता है और यह बयान मेहनत, मशक्कत करके जीने वाले लोगों की तकलीफों का बयान बन जाता है, हर संवेदनशील आदमी की तकलीफ का ब्यान बन जाता है और कविता का धरातल सजीव हो उठता है।

कवि ने सामाजिक पीड़ा और यातना को अपने संवेदनात्मक स्तर पर भोगा है। अपनी कविताओं में मनुष्य की यातना की पहचान करने वाले वह सार्थक कवि हैं। डॉ. सतीश पाण्डे का कहना है कि सामान्य व्यक्ति के हृद्य की गहराई में छिपे दर्द को अपनी कविताओं का विषय बनाकर उन्हें सार्थक अभिव्यक्ति वह व्यक्ति दे सकता है, जिसने स्वयं को उस दर्द का हिस्सेदार बनाया हो। कहना न होगा कि इस प्रात्यक्षिक अनुभव के अभाव में अनेक कविताएं न तो पाठकीय चेतना को उद्वेलित कर पाती हैं और न ही उन्हें रोने हंसने या लड़ने की जीवन्तता दे पाती है। कुमार कृष्ण के सन्दर्भ में यह कथन सही उतरता है।

सामाजिक विद्रूपताओं को मूर्त करने वाला कवि कल्पनाजीवी न होकर यथार्थ के कठोर धरातल की तपन पर खड़ा हो जाता है। भले ही उसके पांव में छाले क्यों न पड़ जाएं। डॉ. नत्थन सिंह के अनुसार अपनी जमीन की हरकतों पर कविता लिखने वाला कवि कल्पनाजीवी तथा कुण्ठित नहीं हो सकता। यही कारण है कि वह मवेशियों के त्यौहार पर कविता लिखता है, छेरिंग दोरजे तथा उसके परिवार की करुण कहानी लिखता है, धूप में पकते आदमी के साथ सहानुभूति रखता है, रोटी के जले हुए इतिहास को बार-बार शब्द देने का प्रयास करता है, बेघर इन्सानों को घर सुलभ कराने के लिए बनाई गई आकर्षक योजनाओं की विफलता पर व्यंग्य करता है। दुर्घटनाओं की सूची बनाने में तल्लीन, पर असली मुजरिम को नामांकित न करने वाले प्रशासन पर चोट करता है, योजनाओं की गुफा में खोते देश के यथार्थ पर व्यथित होता है, रात-दिन दर्जनों जूतों की मुरम्मत करके भी दोनों वक्त की रोटियां अर्जित न कर पाने वाले श्रमिक के दुःख में हिस्सा बंटाता है।

निष्कर्ष

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कुमार कृष्ण का कवि अपने परिवेश के प्रति सचेत है। समाज की गति को पहचानता है और एक भोक्ता के रूप में हर दर्द को भोगता है। कवि अपने बाह्यकारों तथा निजी परिवेश के प्रति अत्यन्त सचेत है। उसकी निजी चिन्ताएं व्यक्तिगत न होकर सामाजिक हों। सबसे बड़ी बात यह है कि वह भारतीय परिवेश और भारतीय जीवन पद्धति की अनुरूपता में ही मानव की समस्याओं को सुलझाना चाहता है। इस सन्दर्भ में कुमार कृष्ण की कविताएं मनुष्य को उसके परिवेश के तनावों में ही परिभाषित करती हैं। जहां तक ग्रामीण परिवेश के प्रति 'बद्ध' होने का प्रयास है या प्रश्न है, वह केवल कुमार कृष्ण ही अकेले कवि हैं। इनका रचना-कर्म पहाड़ी ग्रामीण गन्ध एवं दर्द को आत्मसात् किए हुए हैं कवि गांव के भविष्य के प्रति चिंतित हैं। वह अनुभव करता है कि गांव की जमीन बर्फ की चट्टान बनती जा रही है। अपनी तमाम कविताओं में कवि अपने समय के अनेक आयामों की चर्चा करते हुए देश, आजादी व

लोकतन्त्र के साथ ही जिन्दा रहने की बुनियादी जरूरतों को भी रेखांकित करता है और लक्ष्य करता है कि यदि आदमी की बुनियादी जरूरतें पूरी नहीं की जा सकती तो लोकतन्त्र और आजादी जैसे मूल्यगत आदर्शों का कोई मतलब नहीं है। कहा जा सकता है कि कुमार कृष्ण की कविताओं में गांव के आदमी की तकलीफ, ग्रामीण साहस, उसके मानवीय गौरव बोध, यथास्थिति को तोड़ने की छटपटाहट दिखलाई पड़ती है। कवि का किसानी संस्कार, अपनी संस्कृति तथा उत्पादक संस्कृति के नष्ट होने के खतरे से व्याकुल है। उनकी प्रत्येक कविता में अनुभूति अपने सन्दर्भानुरूप वातावरण में ही वाणी बोलती है।

कुमार कृष्ण का काव्य-संसार समाज से दूर नहीं रहता अपितु समाज में रहते हुए, सामाजिक अन्तर्विरोधों के बीच जीते हुए, व्यवस्था के विभिन्न रूपों की यातनाओं को झेलते हुए वैयक्तिक व सामाजिक स्तर पर मुखर हुआ है। इन्होंने शहर व गांव के विरोधों को अपने भीतर झेलकर जो अभिव्यक्ति दी है वह हिन्दी की कविता को अनूठी देन है। इनका काव्य गांव की ठोस जमीन पर उगता हुआ काव्य है। गांव का समूचा दर्द जो हर फिजां में समाया हुआ है, गांव की गंध, गांव का परिवेश, गांव का जीवन-संघर्ष व गांव की मानसिकता पूरी तरह से इनके काव्य में प्रतिबिम्बत हुई है। कुमार कृष्ण लम्बे समय से साहित्य संसार से जुड़े हुए हैं, इसमें कोई संदेह नहीं कि यह हिमाचल के प्रमुख एवं सधे हुए कवि, आलोचक एवं साहित्यकार हैं। समकालीन हिन्दी साहित्य विशेषतयः हिन्दी काव्य को कुमार कृष्ण से बहुत अपेक्षाएं हैं।

सन्दर्भ

1. कीर्ति केसर, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी का समाज-सापेक्ष अध्ययन: दिल्ली, 1982

2. कश्मीरी लाल, साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययनः कथा सन्दर्भ: दिल्ली, 1993

3. हेमराज कौशिक, हिन्दी कहानीः स्थिति एवं गति: विभूति प्रकाशन, दिल्ली, 1987

4. राजेन्द्र प्रसाद तिवारी, भारतीयता और हिन्दी कविता, पृष्ठ 77

5. गजानन माधव मुक्तिबोध, एक साहित्यिक डायरी, पृष्ठ 25

6. सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन (सं0), तीसरा सप्तक, पृष्ठ 118

7. कुमार कृष्ण, पहाड़ पर बदलता मौसम (चूल्हा), पृष्ठ 25, 40

8. कुमार कृष्ण, पहाड़ पर बदलता मौसम (कविता) पृष्ठ 16

9. कुमार कृष्ण, काठ पर चढ़ा लोहा, पृष्ठ 13, 17, 19, 21, 25, 29, 33, 45, 63

10. शरत (सं0) कुमार कृष्ण का कवि कर्म, पृष्ठ 16, 23, 96, 108

11. कुमार कृष्ण, खुरों की तकलीफ (चरनदास की डायरी), पृ0 51-52, 54-57

12. कुमार कृष्ण, घमर (परिवर्तन), पृष्ठ 4

13. कुमार कृष्ण, घमर (विद्यारम्भ), पृष्ठ 31

14. हिमप्रस्थ, समकालीन कविता, वर्ष-30, अंक-1, अप्रैल 1984, पृष्ठ 19

15. दस्तावेज, अंक-4, वर्ष-14, जुलाई-सितम्बर 1992, पृष्ठ 75-76